इकाई 3 वृद्धि और विकास के सिद्धांत

संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 वृद्धि और विकास के सिद्धांत

3.4 वृद्धि एवं विकास के सिद्धांतों के अध्ययन का शैक्षणिक महत्व

3.5 विकास की अवस्थाएं

3.5.1 शैशवावस्था

3.5.1.1 शैशवावस्था की प्रमुख्य विशेषताएं

3.5.1.2 शैशवावस्था में शिक्षा

3.5.2 बाल्यावस्था

3.5.2.1 किशोरावस्था की मुख्य विशेषताएं

3.5.2.2 किशोरावस्था में शिक्षा

3.5.3 किशोरावस्था

3.5.3.1 किशोरावस्था की मुख्य विशेषताएं

3.5.3.2 किशोरावस्था में शिक्षा

3.6 सारांश

3.7 अभ्यास कार्य

3.8 संदर्भित एवं विशेष अध्ययन ग्रंथ

3.1 प्रस्तावना

मानव जैसे जैसे बड़ा होता है उसमें विभिन्न प्रकार के परिवर्तन होते रहते हैं। एक मानव में होने वाले इन परिवर्तनों को विकास की संज्ञा दी जा सकती है। विकास की विभिन्न अवस्थाएं जैसे शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था, प्रोधावस्था आदि में परिवर्तन की स्पष्ट विशेषताएं होती हैं। अभी तक के पाठों में आपने यह सीखा कि विकास के विभिन्न आयाम हैं और हर आयाम में समय के साथ परिपक्वता आ जाती है। जैसे जैसे व्यक्ति बड़ा होता है उस के विकास में और अधिक परिपक्वता स्पष्ट रूप से प्रतीत होने लगती है। जब तक व्यक्ति का वातावरण सामान्य रहता है उसका विकास एक पूर्व निर्धारित ढंग से होता रहता है।

सभी व्यक्ति एक पूर्व निर्धारित प्रक्रिया से ही अपनी परिपक्वता तक पहुंचते हैं। विकास के इस स्वाभाविक प्रक्रिया के साथ साथ, व्यक्ति के वातावरण से प्राप्त अनुभव के द्वारा भी उसके व्यवहार में परिवर्तन आता रहता है। इसे सिखने की संज्ञा दी जाती है। शैक्षिक भाषा में इसे अधिगम कहा जाता है। अर्थात सीखने का अर्थ है प्राप्त अनुभवों द्वारा भविष्य में अपने व्यवहार में परिवर्तन करते रहना । मानव में सीखने की प्रक्रिया जीवन पर्यंत चलती रहती है। सिखने की प्रक्रिया में व्यक्ति अपने वातावरण के अनुरुप विशेष स्थितियों के लिए विशेष प्रकार की आनुकृतियों के चुनाव के लिए तत्पर रहता है। इस प्रकार से अधिगम निश्चित क्रियाओं के लिए मानसिक और शारीरिक रूप से व्यक्ति की तत्परता है और यह तत्परता की स्थिति व्यक्ति में परिपक्वता को दर्शाती है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्न उद्देश्य प्राप्त कर सकेंगे –

1. वृद्धि और विकास के सिद्धांत की व्याख्या कर सकेंगे।
2. मानव वृद्धि एवं विकास के सिद्धांतों के अध्ययन के महत्व का वर्णन कर सकेंगे।
3. मानव वृद्धि और विकास के प्रत्येक अवस्था की विशेषता को बता सकेंगे।
4. शैशवावस्था, बाल्यावस्था एवं किशोरावस्था की प्रमुख अवस्थाओं में अंतर कर सकेंगे।
5. मानव वृद्धि और विकास के प्रत्येक अवस्था में दी जा सकने वाली शिक्षा एवं प्रयोग की जाने वाली शिक्षण विधियों को स्पष्ट कर सकेंगे।

3.3 वृद्धि और विकास के सिद्धांत

मानव में वृद्धि और विकास की प्रक्रिया के फलस्वरुप होने वाले परिवर्तन कुछ विशेष सिद्धांतों पर ढले हुए प्रतीत होते हैं। इन सिद्धांतो को वृद्धि एवं विकास के सिद्धांत कहा जाता है। नीचे दी गई पंक्तियों में इन सिद्धांतो को बताया जा रहा है

1. **निरंतरता का सिद्धांत –** वृद्धि एवं विकास की प्रक्रिया सतत यानी लगातार रुप से चलती रहती है। यह व्यक्त या अव्यक्त या दोनों ही रुप से संभव है। वृद्धि एवं विकास की निरंतरता के फलस्वरुप विकास प्रतिमान बनाना संभव होता है तथा भावी वृद्धि के बारे में अनुमान लगाया जा सकता है।
2. **वृद्धि और विकास की गति की दर एक ही नहीं रहती –** विभिन्न व्यक्तियों के विकास की गति में भिन्नता होती है और यह विभिन्नता विकास के संपूर्ण काल में यथावत बनी रहती है। वृद्धि की प्रक्रिया सतत होने के साथ–साथ विकास की कुछ अवस्थाओं में अपेक्षाकृत बदलाव आ सकता है। उदाहरण के लिए बालक अपने प्रथम वर्ष में ऊंचाई की दृष्टि से बड़ी तेजी के साथ बढ़ता है परन्तु बाद में यह रफ्तार धीरे धीरे कम हो जाती है।

3. **विकास क्रम की एकरूपता –** विकास की गति एक जैसी न होने तथा पर्याप्त व्यक्तिगत अंतर पाए जाने पर भी विकास क्रम में कुछ एकरूपता के दर्शन होते हैं। विकास की प्रक्रिया एक खास स्वरुप के अनुसार चलती है। शारीरिक दृष्टि यह सिर से पैर की ओर बढ़ती है जबकि मानसिक क्षेत्र में यह मूर्त से अमूर्त चिंतन की क्षमता में अभिवृद्धि के रूप में प्रकट होती है। इसी प्रकार विकास का क्रम केंद्र से प्रारंभ होता है फिर बाहरी विकास होता है और उसके बाद संपूर्ण विकास। उदाहरण के लिए पहले रीड की हड्डी का विकास होता है उसके बाद भुजाओं, हाथ तथा हाथ की उंगलियों का तत्पश्चात इन सब का पूर्ण रुप से संयुक्त विकास होता है।
4. **विकास सामान्य से विशेष की ओर चलता है –** विकास की प्रक्रिया आमतौर पर सामान्य से विशिष्ट की ओर बढ़ती है। उदाहरण के लिए व्यक्ति पहले पूरे समूह का प्रत्यक्षीकरण करता है ना कि उस में पाई जाने वाली इकाई का। बालक को सभी आदमी और जानवर पहले एक ही जैसा प्रतीत होते हैं लेकिन धीरे–धीरे वह अपनी विकास की अवस्था के अनुसार उस में भेद करना जान लेता है।
5. **विकास दो दिशाओं में संपन्न होता है** – प्रथम, परिपक्वता की दिशा में – ऐसे व्यक्ति की शारीरिक एवं मानसिक योग्यता में स्पष्ट रुप से देखा जा सकता है। द्वितीय, अधिगम की दिशा में – जो व्यक्ति की सीखने संबंधी क्षमता के विकास द्वारा दिखाई देता है। इन दोनों ही दिशाओं में होने वाला विकास परस्पर संबंधित हैं
6. **वयक्तिक अंतर का सिद्धांत –** विकास की दर में पाई जाने वाली व्यक्तिगत भिन्नता लगभग समान रहती है। बालक अपनी स्वाभाविक गति से ही वृद्धि और विकास के विभिन्न क्षेत्रों में आगे बढ़ते रहता है और इसी कारण उनमें पर्याप्त भिन्नता देखने को मिलती हैं। कोई भी एक बालक वृद्धि और विकास की दृष्टि से किसी अन्य बालक के समरूप नहीं होता।
7. **विकास का अवस्थाओं पर निर्भरता –** व्यक्ति के विविध पक्षों में विकास की दर भिन्न–भिन्न हुआ करती है। उदाहरण के लिए किशोर अवस्था में सर्जनशीलता और कल्पना का विकास तार्किक क्षमता की तुलना में अधिक तेजी से होता है। जबकि बाल्यावस्था में कार्य करने की अपेक्षा खेलने की प्रवृत्ति अधिक प्रबल होती है। विकास की प्रत्येक अवस्था में अपनी एक पहचान बन जाती है। इसी प्रकार शैशव अवस्था बाल्यावस्था एवं किशोरावस्था में खास तरह के विशेषताएं देखने को मिलती हैं।
8. **विकास की प्रक्रिया एकीकरण के सिद्धांत का पालन करती है –** इसके अनुसार बालक अपने संपूर्ण अंग को और फिर अंग के भागों को चलाना सीखता है। इसके बाद वह उन भागों में एकीकरण करना सीखता है। उदाहरण के लिए एक बालक पहले पूरे हाथ को, फिर उंगलियों को और फिर हाथ एवं उंगलियों को एक साथ चलना सीखता है।

9. **शुरुआती विकास बाद के विकास का प्रेरक होता है –** मानव जीवन में शैशवास्था का विकास बाद की अवस्था के सभी विकास के लिए नीव का काम करता है। यदि मानव को अपने बचपन में ही विकास के सही मौके दिए जाते हैं तो उसके जीवन के बाद के वर्षों में विकास सही दिशा में आगे बढ़ता है। उदाहरण के लिए यदि शैशवास्था में बालक का शारीरिक विकास उचित ढंग से नहीं हो पाता है तो वह उसके बाद के पठन पाठन में प्रतिकूल असर छोड़ता है।
10. **परस्पर सम्बन्ध का सिद्धांत –** विकास की सभी दशाएं जैसे शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक आदि एक दूसरे से परस्पर संबंधित हैं। इनमे से किसी भी एक दिशा में होने वाला विकास अन्य सभी दिशाओं में होने वाले विकास को पूरी तरह प्रभावित करने की क्षमता रखता है। उदाहरण के लिए जिन बच्चों में औसत से अधिक बुद्धि होती है वह शारीरिक और सामाजिक विकास की दृष्टि में भी काफी आगे बढ़े हुए पाए जाते है। दूसरी ओर एक क्षेत्र में पाई जाने वाली न्यूनता दूसरे क्षेत्र में हो रही प्रगति में बाधा डाल देती है। यही कारण है कि शारीरिक विकास की दृष्टि से पिछड़ जाने वाला बालक संवेगात्मक, सामाजिक और बौद्धिक विकास में भी उतना ही पीछे रह जाता है।

3.4 वृद्धि एवं विकास के सिद्धांतों के अध्ययन का शैक्षणिक महत्व

वृद्धि और विकास के सिद्धांतो के ज्ञान से हमें यह ज्ञात होता है कि सभी बालको में एक जैसी गति नहीं होती। इससे तात्पर्य है कि हमें प्रत्येक बालक के लिए एक जैसा पढ़ाने का तरीका नहीं अपनाना चाहिए। हमें व्यक्तिगत अंतरों का ध्यान रखना चाहिए।

बालकों की वृद्धि और विकास के सिद्धांतों के ज्ञान से हम उनसे अधिक या कम आशाएँ लगाने की हमारी गलती से मुक्ति पा सकते हैं। हम हमारे प्रयासों को उनकी क्षमता के अनुसार निर्धारित कर सकते हैं।

वृद्धि और विकास के सिद्धांतों का ज्ञान होने से हम बालकों में होने वाले कमियों को पहले ही जान कर उनके उपचार में सहायता प्रदान कर सकते है।

वृद्धि और विकास की सभी पहलू एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। मानसिक, शारीरिक, संवेगात्मक और सामाजिक विकास का परस्पर संबंध है। इस ज्ञान से हम अपने विषय वस्तु को बालकों के सर्वांगीण विकास के लिए उपयुक्त रुप से तैयार कर सकते हैं।

वृद्धि और विकास के सिद्धांतो का ज्ञान होने से हम बालकों में होने वाले विभिन्न परिवर्तनों के बारे में पहले से ही जान कर उसके अनुसार आने वाली समस्याओं और परिवर्तनों के लिए अपने आप को तैयार रख सकते हैं।

वातावरण का बालक के विकास और वृद्धि में विशेष योगदान होता है। इस बात का ज्ञान हमें वातावरण में आवश्यक सुधार ला बालकों का अधिक से अधिक कल्याण करने के लिए प्रेरित करता हैं।

इस प्रकार की वृद्धि और विकास संबंधी सिद्धांत बालिकों की वृद्धि और विकास को उचित दिशा और मात्रा में बनाए रखने के लिए हमें बहुत कुछ आधार भूमि और परामर्श प्रदान करते हैं।

3.5 विकास की अवस्थाएं

अपने वृद्धि और विकास के दौरान बालक कई अवस्थाओं से गुजरता है। वृद्धि और विकास के विभिन्न पढ़ावों के फलस्वरुप गर्भ में आने के समय से लेकर अपनी मृत्यु तक व्यक्ति कुछ विशिष्ट परिवर्तन महसूस करता है और इन परिवर्तनों के आधार पर उसे विभिन्न नामों से पुकारा जाता है। यह विभिन्न स्तर है शिशु, बालक, किशोर, प्रौढ़ और वृद्ध। यह विभिन्न स्तर उसकी वृद्धि और विकास के विशेष अवस्थाओं की पहचान है। मानव वृद्धि और विकास की इन सभी अवस्थाओं का एक निश्चित कालखंड होता है और एक निश्चित प्रकार के व्यवहार, व्यक्तित्व, गुणों और विकास दरों का प्रदर्शन इन सभी अवस्थाओं में देखने को मिलता है। इन सभी अवस्थाओं को संबंधित जीवन अवधि के साथ अच्छी प्रकार से निम्न रूप में दिखाए जा सकता है।

age range of various awasthayen

ऊपर दिए गए अवस्थाओं को अगर ध्यान से देखा जाए तो विद्यालय शिक्षा के नजरिए से पहली और आखरी अवस्था कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं रखते। शेष तीन अवस्थाएं शैशवावस्था, बालयावस्था, और किशोरावस्था के विषय में हम उनका वृद्धि और विकास ध्यान में रखकर अपनी चर्चा आगे बढ़ाते हैं।

बोध प्रश्न

नीचे दिए गए रिक्त स्थान पर अपना उत्तर स्पष्ट कीजिए।

1. वृद्धि और विकास की विभिन्न सिद्धांतो को अंकित करें।

.....

.....

.....

2. रिक्त स्थान की पूर्ति करें

क. वृद्धि और विकास एक.....प्रक्रिया है।

ख. वृद्धि और विकास की गति की दर एक ही.....रहती है।

ग. विकास की प्रक्रिया आमतौर पर सामान्य से.....की ओर बढ़ती हैं।

घ. शुरुआती विकास बाद के विकास का.....होता है।

ड वृद्धि और विकास की सभी पहलू एक दूसरे से.....हुए हैं।

3.5.1 शैशवावस्था

शैशवावस्था एक बालक का बहुत ही निर्णयक काल होता है। यह अवस्था जन्म से 5 वर्ष तक की मानी जाती है। पहले तीन वर्षों को पूर्व शैशवावस्था और तीन से पांच वर्ष की आयु तक उत्तर शैशवावस्था कहते है। न्यू मैन के अनुसार 5 वर्षों तक की अवस्था शरीर तथा मस्तिष्क के लिए बड़ी ग्रहण शील होती है। सब अवस्थाओं में शैशवावस्था सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। उनका कहना है कि यह अवस्था ही वह आधार है जिस पर बालक के भावी जीवन का निर्माण किया जा सकता है। इस अवस्था में उनका जितना ही अधिक निरीक्षण और निर्देशन किया जाता है उतना ही अधिक उत्तम उसका विकास और जीवन होता है।

3.5.1.1 शैशवावस्था की प्रमुख्य विशेषताएं

शैशवावस्था में शारीरिक विकास बहुत तेजी से होता है। बच्चे का भार और लंबाई में वृद्धि बहुत तेजी से होती है। यह अवस्था प्रथम तीन वर्ष तक रहती है और इसके बाद विकास की गति धीमी पड़ जाती है। उसकी इंद्रियों, कर्म इंद्रियों, आंतरिक अंगों, मांसपेशियों आदि का क्रमिक विकास होता है। शैशवावस्था में बालक के शारीरिक ही नहीं अपितु मानसिक क्रियाओं जैसे ध्यान, स्मृति, कल्पना, संवेदना और प्रत्यक्षीकरण आदि के विकास में पर्याप्त तेजी आ जाती है। तीन वर्ष की आयु तक शिशु के लगभग सभी मानसिक शक्तियां कार्य करने लगती हैं। शईरिक एवं मानसिक तेजी के कारण इस अवस्था में शिशु के सीखने की प्रक्रिया बहुत तेज होती है और वह अनेक आवश्यक बातों को सीख लेता है।

जन्म के बाद शिशु कुछ समय तक बहुत असहाय स्थिति में रहता है। उसे भोजन और अन्य शारीरिक आवश्यकताओं के अलावा प्रेम और सहानुभूति पाने के लिए भी दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है। वह मुख्यतः अपने माता पिता पर निर्भर रहता है। इस अवस्था में शिशु में आत्म प्रेम की भावना बहुत अधिक होती है। वह अपने माता पिता, भाई–बहन आदि का प्रेम प्राप्त करना चाहता है। वह यह भी चाहता है कि उसके अलावा वह प्रेम किसी और को ना मिले अन्यथा उसे ईर्षा होती है।

शैशवावस्थ में शिशु को अच्छी और बुरी, उचित और अनुचित बातों का ज्ञान नहीं होता है। वह उन कार्यों को करना चाहता है जिसमें उसको आनंद आता है भले ही वह ठीक ना हो। यदि उसको किसी बात पर क्रोध आ जाता है तो वह उसको अपनी वाणी या क्रिया द्वारा व्यक्त करता है । यदि उसे भूख लगती है तो उसे जो भी वस्तु मिलती है उसको अपने मुंह में रख लेना चाहता है।

सामाजिक भावना के विकास के आधार पर 2 से 5 वर्ष तक के बच्चों को अपनी आयु वर्ग के बच्चों के साथ खेलना बहुत अच्छा लगता है। वह अपनी वस्तुएं अपने दोस्तों के साथ बांटने में सहज ही तैयार हो जाता है। इस अवस्था में ही बालकों में रुचि और अरुचि का भाव पूर्ण रूप से व्यक्त तो जाता है लेकिन वह इसका कारण बताने में असमर्थ होता है। धीरे–धीरे वह वह अधिक निश्चित रूप धारण कर लेती है और और रुचि एवं अरुचि के रुप में प्रकट होने लगती है। शिशु में जन्म के समय उत्तेजना के अलावा और कोई संवेग नहीं होता लेकिन अब दो वर्ष की आयु तक बालक में लगभग सभी संवेगों का विकास हो जाता है। इस अवस्था में शिशुओं में प्रमुख रूप से जो संवेग देखे जाते हैं वह हैं भय, क्रोध, प्रेम और पीडा। शिशु अवस्था में बच्चों में दोहराने की प्रकृति बहुत अधिक होती है ऐसा करने से उन्हे विशेष प्रकार का सुख प्राप्त होता है।

शैशवावस्था में बच्चे बहुत ही जिज्ञासू प्रकृति के होते हैं। वह अपने खिलौनों का विभिन्न प्रकार से प्रयोग करता है। वह उसको फर्श पर फेंक सकता है। वह उस के भागों को अलग–अलग कर सकता है। वह हमेशा उनके साथ प्रयत्नशील रहता है और अपनी जिज्ञासा को संतुष्ट करने की कोशिश करता रहता है। वह अपने प्रश्नों में क्यों और कैसे जैसे शब्दों को हमेशा इस्तेमाल करता है। इस अवस्था में बच्चे अधिकतर अनुकरण करकर ही सीखते हैं। वह अपने आसपास के व्यक्तियों से यह अनुकरण करकर सीखता है। शिशुओं में अकेले और फिर दूसरों के साथ खेलने की प्रकृति होती है। एक बहुत ही छोटा शिशु पहले अकेला खेलता है फिर धीरे–धीरे दूसरे बच्चों के साथ खेलने की अवस्था से गुजरता है। धीरे–धीरे वह अपनी आयु के बालकों के साथ खेलने में बहुत आनंद का अनुभव करता है।

3.5.1.2 शैशवावस्था में शिक्षा

शैशवावस्था सीखने का आदर्श काल है। शैशवावस्था में सीखने की सीमा और तीव्रता विकास की किसी और अवस्था की तुलना में बहुत अधिक होती है इसलिए शिशु को अपने विकास के लिए शांत, स्वस्थ और सुरक्षित वातावरण अपने घर और विद्यालय में प्रदान किया जाना चाहिए। एक शिशु को अपनी आवश्यकताओं के लिए दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है। इस निर्भरता को माता पिता और शिक्षकों को प्रेम, शिष्टता और सहानुभूति का व्यवहार दिखाकर पूरा करना चाहिए। शैशवावस्था मैं शिशु अपने आसपास की

वस्तुओं में अपनी जिज्ञासा सहज ही व्यक्त करने लगता है। जिज्ञासा को उसके माता–पिता और शिक्षकों द्वारा उचित रुप से संतुष्ट करने का प्रयत्न करना चाहिए।

शैशवावस्था मैं एक शिशु कल्पना के जगत में रहता है और उसी को अपना वास्तविक संसार मानता है इसलिए इस समय उसे इस तरह शिक्षा देनी चाहिए कि वह वास्तविकता के निकट रहे। इस अवस्था में शिशु को स्वतंत्रता प्रदान कर आत्मनिर्भर बनने का अवसर दिया जाना चाहिए। इससे उसे स्वयं सीखने, काम करने और विकास करने की प्रेरणा मिलती है। इस अवस्था में भी शिशुओं में अनेक गुण निहित होते हैं। इन गुणों की पहचान के लिए उन्हें अवश्यक अवसर प्रदान किए जाने चाहिए। उसे ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिए जिससे उसके अंदर विद्यमान गुणों को बाहर लाया जा सके और उनका विकास किया जा सके। शैशवावस्था में शिशु का सामाजिक विकास भी बहुत आवश्यक है। उसे अपने उम्र के बच्चों के साथ और बड़ों के साथ मिलने–जुलने और खेलने– कूदने का मौका दिया जाना चाहिए। शिशुओं को अपने आप को प्रदर्शित करने का और अपने गुणों को सामने लाने का मौका दिया जाना चाहिए। इस हेतु विद्यालय में कई प्रतियोगिताओं का आयोजन किया जा सकता है जिसमें बच्चों को अपने आपको स्वयं प्रदर्शित करने का मौका मिले।

शैशवावस्था मैं बच्चों की मानसिक क्रियाएँ बहुत तेज होती है। अतः उसे ऐसे अवसर दिए जाने चाहिए जिसमें उसे सोचने विचारने के अधिक से अधिक मौके मिले। शिशु के माता–पिता और शिक्षकों को शैशवावस्था एक ऐसा अवसर है जब उसमें अच्छी आदतों का विकास किया जा सकता है। शैशवावस्था में बच्चों को कहानियाँ और कल्पनिक पात्र बहुत ज्यादा प्रभावित करते हैं और इस उम्र के बच्चों में शिक्षा और सचित्र पुस्तकों का विशिष्ट स्थान होता है। इनका प्रयोग कर बच्चों में सत्य बोलने, बड़ों का आदर करने, समय पर अपना काम पूरा करने जैसे कई अच्छी आदतों का निर्माण करना चाहिए।

शैशवावस्था में भी बच्चों में कार्य करकर रखने की आदत विकसित करनी चाहिए जिससे जो शिक्षा उन्हें प्राप्त हुई है वह स्थाई हो। शैशवावस्था मैं कहा जाता है कि बच्चों का कार्य खेल है इसलिए इस उम्र में शिशुओं को खेल द्वारा शिक्षा दी जानी चाहिए। इस उम्र में बच्चों के विभिन्न आयामों का अलग–अलग विकास करने की अवश्यकता है। इसके लिए विद्यालय में विशेष क्रियाएँ की जानी चाहिए। शारीरिक विकास के लिए अलग क्रियाएँ, इसी तरह ज्ञानात्मक विकास के लिए अलग क्रियाएँ और सामाजिक विकास के लिए अलग–अलग क्रियाएँ जिससे उनका सर्वांगीण विकास हो सके।

शिश शिक्षा सच्चे अर्थों में तभी प्रभावी होगी जब उसे प्रयोग करने के तरीके उत्तम हो। इसके लिए शिशु को स्वतंत्र एवं मुक्त वातावरण प्रदान करना आवश्यक है। शिशुओं को जो प्रिय हो, उन्हें जिस में आनंद आए, उन्हें जो रुचिकर लगे, उन्हीं तरीकों को अपनाएं और उसी के अनुसार गतिविधियां कराएं।

बोध प्रश्न

नीचे दिए गए रिक्त स्थान पर अपना उत्तर स्पष्ट कीजिए।

1. विकास की अवस्थाओं का उल्लेख कीजिये

.....

.....

.....

2. सही उत्तर चुने

क. शैशवावस्था होती है –

अ. पांच वर्ष तक ब. बारह वर्ष तक स. २१ वर्ष तक ड. इनमे से कोई नहीं

ख. शैशवावस्था की विशेषता नहीं होती –

अ. शारीरिक विकास में तीव्रता ब. मानसिक विकास में तीव्रता

स. दूसरों पर निर्भरता ड. नैतिकता का होना

3.5.2 बाल्यावस्था

बाल्यावस्था मानव जीवन का वह महत्वपूर्ण समय है जिसमें उसके सभी आयामों का संपूर्ण विकास होता है। शैशवावस्था के बाद बाल्यावस्था का आरंभ होता है। हालांकि इनके बीच में एक विशेष उम्र की सीमा नहीं है। अलग–अलग बालकों में यह अलग अलग समय पर शुरु होता है। बाल्यावस्था में बालक के व्यक्तित्व का निर्माण होता है। इस अवस्था में सीखी गई आदतें, व्यवहार, पैदा की गई रुचियाँ और इच्छाएँ सामान्यतः स्थाई होती हैं। विभिन्न दार्शनिकों द्वारा यह सत्यापित किया गया है कि शैक्षिक दृष्टि से जीवन चक्र में बाल्यावस्था से अधिक कोई महत्वपूर्ण अवस्था नहीं है।

इस अवस्था के बालकों को शिक्षा देने वाले शिक्षकों को उनकी आधारभूत आवश्यकताओं का, उनकी परेशानियों का और इस उम्र की परिस्थितियों का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। इस ज्ञान से एक शिक्षक बालकों के व्यवहार को परिवर्तित और सुव्यवस्थित करने में महति भूमिका निभा सकता है। संक्षिप्त रुप में बाल्यावस्था के विषय में कहा जाए तो यह अवस्था अनोखे परिवर्तन का काल है। उदाहरण के लिए छह वर्ष की उम्र में बालक का स्वभाव बहुत ही उत्तेजित करने वाला होता है। वह हर बात के लिए ना कहना शुरु कर देता है। सात वर्ष की आयु तक बच्चा दूसरों से अलग और अकेला रहना पसंद करता है। आठ वर्ष

की उम्र में वह अपनी उम्र के अन्य बालकों से सामाजिक संबंध बनाने की बहुत ही भावनात्मक कोशिश करता है। 9 से 12 वर्ष की उम्र में उसका विद्यालय की तरफ से मोह भंग हो जाता है। वह कोई भी नियमित कार्य करने में रुचि नहीं लेता है। उसके स्थान पर वह कोई महान या रोमांचकारी कार्य करना चाहता है।

3.5.2.1 बाल्यावस्था की मुख्य विशेषताएं

यूं तो बाल्यावस्था को 6 से 12 वर्ष की उम्र तक माना जाता है। लेकिन इस दायरे में बाल्यावस्था को सिमटा पाना बहुत ही मुश्किल है। भिन्न भिन्न बालकों के लिए यह दायरा भिन्न हो सकता है। छह से सात वर्ष की उम्र के बाद बालकों के शरीर और मानसिक विकास में स्थिरता आ जाती है। रोस के अनुसार शारीरिक और मानसिक दृढता बाल्यावस्था की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है। यह अस्थिरता उसे शारीरिक और मानसिक रुप से मजबूत बनाती है। इस उम्र तक वह सामान्य सोचने समझने की शक्ति पाकर अपने आपको बडों जैसा दिखाने की कोशिश करता है।

इस उम्र में बालक के शारीरिक विकास और उसके सामान्य व्यवहार का सहसंबंध इतना महत्वपूर्ण होता है कि यदि हम समझना चाहे की भिन्न–भिन्न बालकों में क्या क्या समानताएँ हैं, क्या–क्या भिन्नताएँ हैं, आयु वृद्धि के साथ व्यक्ति में क्या क्या परिवर्तन होते हैं, तो हमें बालकों के शारीरिक विकास का अध्ययन करना होगा।

बाल्यावस्था में बालक की मानसिकयोग्यताएं भी निरंतर बढ़ती रहती हैं। उसमें संवेदना और प्रत्यक्षीकरण की शक्तियाँ भी बढ़ती रहती हैं। उसमें अपने पूर्व अनुभवों को स्मरण रखने की योग्यता उत्पन्न हो जाती है जिससे वह विभिन्न बातों के बारे में तर्क और विचार करने की क्षमता प्रदर्शित करता है। वह अब एक ही विषय पर अधिक समय तक ध्यान भी केंद्रित कर सकता है। अब उसकी जिज्ञासा भी बहुत अधिक बल पकड़ लेती है। वह शैशवावस्था जैसे सवाल नहीं पूछता। उसके सवाल अधिकतर तर्कपूर्ण और विचारों से ओत प्रोत होते हैं।

इस अवस्था में बालक अपनी काल्पनिक जगत जो कि उसने शैशवावस्था में बनाई थी से निकलकर वास्तविक जगत में प्रवेश करता है। वह वास्तविकता के जगत की हर एक इकाई में प्रवेश कर उसके बारे में अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त करना चाहता है। इस उम्र के बालक नए–नए कार्य करना चाहते हैं। वह नए–नए कार्य कर अपनी क्षमता साबित करना चाहते हैं। उनको नियमित कार्य छोड़कर रचनात्मक कार्य करने में अधिक आनंद आता है। इस उम्र के लड़के घर से बाहर निकल कर नए प्रयोग करना चाहते हैं। वही लड़कियां घर में ही कोई न कोई नया कार्य करना चाहती हैं जो उन्हें रोमांचित करें जैसे सिलाई

करना, खाना पकाना आदि। इस उम्र के बच्चे अपना एक समूह विकसित कर लेते हैं और उस समूह के प्रति बहुत ही वफादार रहते हैं। वे इस समूह के सदस्यों के साथ अधिक से अधिक समय व्यतीत करना चाहते हैं।

बाल्यावस्था में बालक प्रायः अनिवार्य रूप से किसी ना किसी समूह का सदस्य हो जाता है जो अच्छे खेल खेलने और ऐसे कार्य करने के लिए नियमित रूप से एकत्र होता है जिनके बारे में बड़ी आयु के लोगों को कुछ भी नहीं बताया जाता है। इससे उन में सामाजिक गुणों जैसे सहयोग, सदभवना, सहनशीलता आदि का विकास होता है। यह अवस्था में कदम रखते ही बालकों में नैतिक गुणों का विकास होने लगता है। उन में अच्छे बुरे का ज्ञान एवं न्याय पूर्ण व्यवहार, इमानदारी और सामाजिक मूल्यों की भावना का अच्छा ज्ञान हो जाता है।

शैशवावस्था के विपरीत इस अवस्था में बालकों का व्यक्तित्व बहिर्मुखी हो जाता है। यह इसलिए होता है क्योंकि वह बाहर के कार्यों में रुचि लेने लगता है और अन्य व्यक्तियों, वस्तुओं और कार्यों के विषय में अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त करना चाहता है। इस अवस्था में अधिकतर बालक अपने संवेगों पर उचित समय पर नियंत्रण करना एवं अच्छी और बुरी भावनाओं के बीच अंतर रखना सीख जाता है। इस उम्र के बच्चों में विभिन्न नयाब चीजें इकट्ठा करने की आदत बहुत अधिक पाई जाती है। बालक विशेष रुप से अनोखे पत्थर, कांच के टुकडे, मशीनों के भाग आदि वस्तुओं का संचय करता है। वही बालिकाएँ गुडियों, अलग–अलग प्रकार के कपड़े के टुकडों, खिलौनों आदि का संचय करती है। बच्चों में बिना किसी उद्देश्य के भ्रमण करने की प्रवृत्ति अधिक पाई जाती है। यह इसलिए भी हो सकता है क्योंकि वह नई–नई चीजें खोजना चाहते हैं। कई बार इसके लिए वह स्कूल से भागने का जोखिम भी उठा लेते हैं।

बाल्यावस्था में बच्चों में काम प्रवृत्ति कम ही दिखाई देती है। वह अपना ज्यादातर समय खेलने कूदने, अपने मित्रों से मिलने और नए नए कार्य करने में व्यतीत करते हैं। काल और ब्रूस के अनुसार 6 से 12 वर्ष की अवधि की एक अपूर्व विशेषता है मानसिक रुचियों में स्पष्ट परिवर्तन। इस आयु वर्ग के बालकों की रुचियों में निरंतर परिवर्तन आता रहता है। वे स्थाई रूप से कोई भी रुचि रखने की जगह वातावरण में परिवर्तन के साथ नई–नई रुचियाँ अपनाते रहते हैं।

3.5.2.2 बाल्यावस्था में शिक्षा

बाल्यावस्था शैक्षिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। ब्लेयर और जोंस के अनुसार बाल्यावस्था वह समय है जब व्यक्ति के आधारभूत दृष्टिकोणों, मूल्यों आर आदर्शों का बहुत सीमा तक निर्माण होता है। अतः माता पिता, शिक्षक और समाज का यह उत्तरदायित्व बनता है कि वह इस उम्र के बच्चों के विकास के लिए उचित

माहौल बनाए। इस अवस्था में बालकों की भाषा में बहुत तेजी से विकसित होती है अतः इस बात का ध्यान रखकर बालकों को भाषा का अधिक से अधिक ज्ञान दिया जाना चाहिए। विशेषकर द्वितीय भाषा का ज्ञान इस उम्र में देने से वह अधित फलप्रद होगा। इस अवस्था में बालकों का मस्तिक्ष बहुत तीव्र होता है। अतः उन्हें सभी विषयों पर ध्यान दिया जाना चाहिए। विद्यालय में अधिक से अधिक विषयों का अध्ययन सार्थक रूप से कराया जाना चाहिए जिससे वह उन विषयों के बारे में अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त कर सके।

इस उम्र के बच्चे नियमित कार्यक्रम से बहुत ज्यादा ऊब जाते हैं इसलिए उनको ऐसा पाठयक्रम दिया जाना चाहिए जो की रोचक और भिन्न हो। इन बालकों की रुचियाँ निरंतर बदलती रहती है अतः पाठ्य विषय और शिक्षण विधि में भी निरंतर बदलाव आना चाहिए। ऐसा ना करने पर उनकी शिक्षण की तरफ आकर्षण कम हो जाता है और वे अन्य नकारात्मक चीजों की तरफ मुड़ जाते हैं। बालक में जिज्ञासा की प्रवृति होती है अतः उसे दी जाने वाली शिक्षा का स्वरुप ऐसा होना चाहिए जिससे उसकी जिज्ञासा शाँत हो। इस उम्र के बच्चे अधिकतर समूह में रहना चाहते हैं। उन्हें मिलना–जुलना और एक साथ कार्य करना बहुत अच्छा लगता है। अतः विद्यालय में उन्हें साथ में काम करने और साथ में खेलने का विभिन्न आयोजनों द्वारा अवसर दिया जाना चाहिए।

बाल्यावस्था के बालक बहुत ही रचनात्मक होते हैं। उन्हें अपनी रचनात्मकता को बाहर लाने का विद्यालय में उचित अवसर दिया जाना चाहिए। बालक की विभिन्न मानसिक रुचियों को संतुष्टि देने के लिए उसके अंदर छुपी हुई शक्तियों का अधिकतम विकास किया जाना चाहिए। इस कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिए विद्यालय में अधिक से अधिक पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं का संचालन किया जाना चाहिए। इस उम्र के बालक नई नई जगह खोजने और उनके बारे में अधिक जानने के लिए बहुत उत्सुक होते हैं इसलिए विद्यालय में पर्यटन और स्काउटिंग आदि कार्यक्रमों के द्वारा शैक्षिक भ्रमण का भी अवसर प्रदान किया जाना चाहिए।

बालकों में संचय करने की तीव्र इच्छा होती है। माता पिता और शिक्षकों को उन्हें शिक्षाप्रद वस्तुओं का संचय करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। बालाकों में संवेगों का बहुत ही उग्र प्रदर्शन करने की प्रकृति होती है। इस उम्र में उचित आयोजनों द्वारा उन्हें उचित दिशा प्रदान करने का विद्यालय एवं माता पिताओं को विशेष ध्यान रखना चाहिए। विभिन्न क्रियाओं द्वारा उनके संवेगों को प्रदर्शित करने के लिए उचित अवसर प्रदान करना चाहिए। इस उम्र के बालों में स्वाभाविक क्रियाशीलता और खेल प्रवृति पाई जाती है। विद्यालय में स्वस्थ प्रतिस्पर्धा का अवसर प्रदान किया जाना चाहिए। इससे बालकों में सामाजिक गुणों का विकास होता है। विद्यालय में अनिवार्य रुप से ऐसी क्रियाओं का आयोजन होना चाहिए जिसमें

बच्चे अनुशासन, आत्म नियंत्रण, सहानुभूति, प्रतिस्पर्धा, सहयोग आदि सामाजिक गुणों का अधिकतम विकास कर सकें।

पियाजे ने अपने अध्ययनों के आधार पर बताया है कि लगभग 8 वर्ष का बालक अपने नैतिक मूल्यों का निर्माण और समाज के नैतिक नियमों में विश्वास करने लगता है। उन्हें इन मूल्यों का उचित निर्माण और नियमों में दृढ़ विश्वास रखने के लिए नियमित रुप से नैतिक शिक्षा दी जानी चाहिए। इसके लिए विद्यालय में विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन किया जा सकता है। साथ ही सरल कहानियों द्वारा नैतिक शिक्षा दी जा सकती है। इस उम्र के बच्चे कठोर अनुशासन पसंद नहीं करते हैं। वह शारीरिक दंड, बल प्रयोग और डाँट डपट से घृणा करते हैं ना ही वह उपदेश सुनना चाहते हैं। उन्हें धमकियों की भी कोई चिंता नहीं होती। विद्यालय में शिक्षा प्रेम और सहानुभूति पर आधारित होनी चाहिए।

ब्लयेर, जोंस और सिम्पसन के अनुसार शैक्षिक दृष्टिकोण से जीवन चक्र में बाल्यावस्था से अधिक महत्वपूर्ण और कोई अवस्था नहीं है। जो अध्यापक इस अवस्था के बालकों को शिक्षा देते हैं उन्हें बालकों का उनकी आधारभूत आवश्यकताओं का, उनकी समस्याओं का और उनकी परिस्थितियों का पूर्व ज्ञान होना चाहिए जो उनके व्यवहार को रूपांतरित कर सही दिशा प्रदान करता है।

बोध प्रश्न

नीचे दिए गए रिक्त स्थान पर अपना उत्तर स्पष्ट कीजिए।

1. सही गलत का बताओ

क. बाल्यावस्था में भाषा ज्ञान पर बल दिया जाता है।

ख. बाल्यावस्था में रचनात्मक कार्यों पर बल नहीं दिया जाना चाहिए।

ग. बाल्यावस्था में बाला किसी ना किसी समूह का सदस्य बनना चाहता है।

घ. बाल्यावस्था में बालक की जिज्ञासा शांत नहीं करनी चाहिए।

2. रिक्त स्थान की पूर्ति करो

क. शैशवावस्था के बाद.....का आरंभ होता है।

ख. बाल्यावस्था में..... बहुत अधिक बल पकड़ लेती है।

ग. बाल्यावस्था में बालक काल्पनिकता से निकलकर.....में प्रवेश करता है।

घ. बाल्यावस्था में बालक नायाब चीजें.....करने में रूचि दिखाता है।

3.5.3 किशोरावस्था

किशोरावस्था शब्द की उत्पत्ति लेटिन भाषा के शब्द 'एडोलेसिअर' से हुई है, जिसका अर्थ है वृद्धि होना। इस अर्थ में किशोरावस्था की अत्यधिक वृद्धि और विकास की अवस्था को जाना और समझा जा सकता है। इस अवस्था में बालक और बालिकाएं में आश्चर्यजनक वृद्धि और परिवर्तन देखा जा सकता है। किशोरावस्था की शुरुआत या अंत कब होता है इस विषय पर कई मतभेद है। तकनीकी तौर पर जब किसी बालक या बालिका में यौनसंबंधी परिपक्वता अर्थात संतान उत्पन्न करने की क्षमता आ जाए उसे किशोर कहा जा सकता है। दूसरी ओर जब वह शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और संवेगात्मक रुप से परिपक्व होकर अपने समाज तथा समुदाय में एक व्यस्क व्यक्ति की तरह व्यवहार करने लग जाए तो यह उसकी किशोरावस्था का अंत माना जा सकता है।

शैशवावस्था की तरह किशोर अवस्था में भी व्यक्तित्व के सभी पहलुओं का अत्याधिक गति से वृद्धि और विकास होता है। किशोर भी एक शिशु की तरह भावुक, संवेदनशील, उत्तेजित, अशांत और चंचल रहते हैं और इसके परिणाम स्वरुप उसमे कई नए परिवर्तन दिखाई देते हैं। इस तरह मानव जीवन के विकास की प्रक्रिया में किशोरावस्था का महत्वपूर्ण स्थान है। यह एक सतत प्रक्रिया है और इसे बाल्यावस्था तथा प्रौढावस्था के मध्य का काल माना जा सकता है।

जर्शील्ड के अनुसार किशोरावस्था वह समय है जिसमें विचारशील व्यक्ति बाल्यावस्था से परिपक्वता की ओर पदार्पण करता है। हल के शब्दों में किशोरावस्था बडे संघर्ष, तनाव, तूफान तथा विरोध की अवस्था है क्योंकि वह शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार से चमत्कारी परिवर्तन महसूस कर रहा होता है । इस तरह यह बाल्यावस्था का अंत और प्रौढावस्था के आरंभ के बीच का काल है। सामांयता बालको की किशोरावस्था लगभग 13 वर्ष की आयु में और बालिकाओं की लगभग 12 वर्ष की आयु में आरंभ हो जाती है।

3.5.3.1 किशोरावस्था की मुख्य विशेषताएं

किशोरावस्था में क्रांतिकारी शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और संवेगात्मक परिवर्तन होते हैं। इस अवस्था में कई बार परिवर्तन एकदम होते हैं और उनका पूर्व अवस्थाओं से कोई संबंध नहीं होता। कई बार यह परिवर्तन निरंतर और कई बार क्रमशः होते हैं। किशोरावस्था एक ऐसा समय है जिसमें किशोर अपने को व्यस्क समझता है और व्यस्त उसे बालक समझते हैं।

बिग और हंट के अनुसार किशोर अवस्था की विशेषताओं को सर्वोत्तम रूप से व्यक्त करने वाला एक शब्द है 'परिवर्तन'। यह परिवर्तन बच्चे के सभी आयामों को छूता है। किशोरावस्था को शारीरिक विकास का सर्वश्रेष्ठ काल माना जाता है। इस समय किशोर के शरीर में कई परिवर्तन होते हैं जैसे भार और लंबाई का तेजी से बढ़ना, मांसपेशियों और शारीरिक ढांचे में दृढ़ता आना, किशोरों में दाढ़ी और मूंछ का दिखाई देना और किशोरियों में प्रथम मासिक स्राव आना।

इस अवस्था में किशोर के मस्तिष्क का लगभग सभी दिशाओं में विकास होता है। उसमें कल्पना और दिवास्पनों की बहुलता, बुद्धि का विकास, सोचने समझने और तर्क करने की शक्ति में वृद्धि, विरोधी मानसिक दशाएँ जैसे विशेष मानसिक गुण स्पष्ट रुप से देखे जा सकते हैं। इस उम्र में किशोर कुछ चुने हुए विशिष्ट मित्र बनाता है जिनके साथ वह अपनी समस्याओं के बारे में खुल कर बात कर सकता है। किशोर संवेगात्मक रुप से बहुत ही प्रबल होते हैं। वह विभिन्न अवसरों में विभिन्न तरीके से व्यवहार करते हैं। कभी–कभी वह अत्याधिक क्रियाशील होता है और कभी–कभी बिल्कुल ही अलसी और क्रियाहीनं होता है।

किशोरावस्था में बालक अस्थिर और असंयोजित रहते है। उनमे अपने वातावरण से समायोजन भी नहीं देखा जा सकता। इस उम्र के बालकों में शारीरिक और मानसिक स्वतंत्रता बहुत जोर पकड़ती रहती है। वह किसी के आदेश को मानना नहीं चाहता। उनमें एक विद्रोह की भावना उत्पन्न होती है। वह सभी प्रकार की चीजों के लिए अपना खुद का दृष्टिकोण बना लेते हैं।

किशोरावस्था में काम इंद्रियों की परिपक्वता और काम शक्ति का विकास सबसे महत्वपूर्ण विशेषताओं में से एक है। इस अवस्था के पूर्व काल में बालकों और बालिकाओं में समान लिंग के प्रति आकर्षण होता है। इस अवस्था में अपनी विपरीत लिंग के प्रति प्रबल रूचि उत्पन्न होती है। उनमें लिंगीय संभोग का आनंद लेने की बड़ी तीव्र इच्छा होती है। एक किशोर इस समय तक एक समूह का बहुत ही वफादार सदस्य बन जाता है। इस समूह को अपने परिवार और विद्यालय से भी अधिक महत्वपूर्ण समझता है। यदि उसके समूह के दृष्टिकोण से कोई भी भिन्नता प्रकट करें तो वह गलत होने पर भी अपने समूह का ही साथ देता है। समूह उनकी भाषा, नैतिक मूल्यों, वस्त्र पहनने की आदतों और भोजन की विधियों को भी प्रभावित करता है।

किशोरों की रुचियों में 15 वर्ष की आयु तक निरंतर परिवर्तन आता रहता है। उसके बाद उनकी रुचियों में स्थिरता आ जाती है। किशोरावस्था में समाज सेवा की अति तीव्र भावना होती है। उन का उदास हदय मानवजाति के प्रेम से ओत–प्रोत होता है और वह आदर्श समाज का निर्माण करने में सहायता देने के लिए तैयार रहते हैं। किशोरावस्था की शुरुआत में बालकों को धर्म और ईश्वर में आस्था नहीं होती। उनके मन में

धर्म और ईश्वर के प्रति कई सारे सवाल होते हैं जिनके उत्तर उन्हें कहीं सही ढंग से नहीं मिल पाते लेकिन जैसे जैसे वह कठिन दौर से गुजरते हैं और चुनौतियों का सामना करते हैं वह धीरे–धीरे ईश्वर को मानने लगते हैं।

किशोरावस्था से पूर्व बालक अच्छे बुरे, नैतिक–अनैतिक और सत्य–असत्य जैसे नैतिक बातों के बारे में कई प्रश्न पूछते हैं। कशोर होने पर वह स्वयं इन बातों पर विचार करते हुए अपने जीवन मूल्यों का निर्माण करता है। वह ऐसे सिद्धांतों का निर्माण करना चाहता है जिन की सहायता से वह अपने आप को एक विशेष व्यक्तित्व के रुप में भिन्न रुप से प्रकट कर सके। किशोरों में महत्वपूर्ण व्यक्ति बनने और बड़ो के समान एक निश्चित स्थिति प्राप्त करने की अत्यधिक अभिलाषा होती है।

किशोरावस्था में बालक बहुत ही भावुक होता है। वह अपने जीवन मूल्यों, नए अनुभव, समाज में फैले सही गलत की अलग–अलग विचार धाराओं के कारण आंदोलन करने की स्थिति में आ जाता है। कई बार उसका यह संघर्ष उसके अंदर अपराध प्रवृत्ति का विकास भी कर देता है। किशोरों में अपने भविष्य को सवारने के प्रति भी बहुत चिंता होती है। यह वह उम्र है जब वह अपने चारों ओर के विषय में जानकारी प्राप्त कर लेता है। वह अपना व्यवसाय चुनने के विषय में भी चिंतित हो जाता है और उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कार्य करने लगता है। किशोरों में व्यवहार संबंधी अनेक समस्याएँ तथा व्यवहार प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं।

किशोरावस्था एक ऐसा पड़ाव है जहां बच्चा आत्म संतोष प्राप्त करना चाहता है। अतः शिक्षकों एवं अभिभावकों को किशोरों की समस्याओं का सतर्कता से अध्ययन कर उनको उचित दिशा प्रदान करने का प्रयत्न करना चाहिए।

3.5.3.2 किशोरावस्था में शिक्षा

जैसा कि पहले कहा जा चुका है जीवन का सबसे कठिन काल किशोरावस्था है। यहाँ एक किशोर बड़े संघर्ष, तनाव, तूफान और विरोध की अवस्था महसूस करता है क्योंकि उसे शारीरिक और मानसिक तौर पर बहुत बदलाव महसूस होते हैं। इस समय बालक की शक्तियों को पहचान कर उन शक्तियों को व्यवस्थित धारा प्रदान की जाए तो सफलता प्राप्त की जा सकती है।

किशोरावस्था में शरीर में अनेक बदलाव आते हैं। विद्यालयों में किशोरों को इन शारीरिक बदलाव के विषय में ध्यान देना चाहिए एवं उनके शरीर को सबल और सुडोल बनाए रखने के लिए आवश्यक क्रियाएं जैसे विभिन्न प्रकार के शारीरिक व्यायाम, खेलकूद, स्वास्थ शिक्षा आदि प्रदान किए जाने चाहिए। किशोरों में

इस समय कहीं मानसिक बदलाव भी आते हैं। विद्यालय में शिक्षा उनकी रूचियों, रिझानों, दृष्टिकोणों और योग्यताओं के अनुरुप होना चाहिए।

किशोरों की मानसिक शक्तियों का इस्तेमाल करने के लिए इस समय भ्रमण, वाद विवाद, कविता लेखन, साहित्य गोष्ठी, आदि पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाएँ भी विद्यालय में आयोजित की जानी चाहिए। किशोरों में संवेगों का तीव्र ज्वर उत्पन्न होता है। इन संवेगों को उचित दिशा प्रदान करने के लिए विद्यालय में उनका मार्गदर्शन किया जाना चाहिए तथा कला, साहित्य, संगीत, सांस्कृतिक कार्यक्रम आदि का आयोजन किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त किशोर अधिकतर निराशा के संवेद को जल्द ही महसूस करते हैं और अपराध करने की प्रवृति अपना लेते हैं। विद्यालय में ऐसी क्रियाओं का समावेश किया जाना चाहिए जिससे उनको अपनी उपयोगिता का अनुभव हो और निराशा कम करने के लिए निर्देश तथा परामर्श की व्यवस्था हो।

विद्यालयों में किशोरों के समूह का संगठन इस तरह किया जाना चाहिए जिससे वह उत्तम सामाजिक व्यवहार और संबंधों के पाठ सीख सके। इसके लिए विभिन्न सामूहिक क्रियाएँ एवं सामूहिक खेलों का आयोजन उपयोगी सिद्ध होगा। किशोरों की व्यक्तिगत भिन्नताओं और आवश्यकताओं पर ध्यान केंद्रित करते हुए विद्यालय में विभिन्न पाठ्यक्रमों की व्यवस्था की जानी चाहिए जिससे वह अपने रुचि और योग्यताओं का उच्चतर स्तर प्राप्त कर सकें।

किशोरावस्था एक ऐसी उम्र है जहां व्यक्ति को अपने भविष्य के विषय में निर्णय लेना पड़ता है। विद्यालयों में व्यवसायिक शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था होनी चाहिए जिस से उन्हें विभिन्न व्यवसायों के विषय में प्रारंभिक ज्ञान मिले और अपनी क्षमताओं के अनुसार उनका चयन कर सके। विद्यालयों में उचित नैतिक शिक्षा देने की व्यवस्था होनी चाहिए। किशोरावस्था में व्यक्ति अपने जीवन मूल्यों का स्थायीकरण करता है। अतः विद्यालयों में बच्चों को उचित मार्गदर्शन एवं परामर्श देने व्यवस्था होनी चाहिए जिससे वह अपने विरोधी विचारों में निरंतर द्वंद से बाहर आ सके और एक निष्कर्ष तक पहुंच सके। कोठारी कमीशन ने हमारे माध्यमिक विद्यालयों में नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा की सिफारिश की है जिससे किशोर उचित और अनुचित में अंतर करना सीख कर अपने व्यवहार को समाज के नैतिक मूल्यों के अनुकूल बना सकें।

किशोर अपनी काम प्रवृति से बहुत अधिक संघर्ष करते रहते हैं। विद्यालयों में यौन शिक्षा की व्यवस्था होना चाहिए जिससे उन्हें इस विषय में संपूर्ण एवं सुव्यवस्थित ज्ञान प्राप्त हो और वह गलत रास्तों पर ना निकल जाए। किशोरों में स्वयं–परीक्षण, निरीक्षण, विचार और तर्क करने की प्रवृति होती है। अतः उसे शिक्षा देने के लिए परंपरागत विधियों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। किशोरों की शिक्षा के लिए नवीन शिक्षा विधियों

का प्रयोग करना चाहिए जो व्यवहारिक होने के साथ–साथ उनके दैनिक जीवन की बातों से प्रत्यक्ष संबंध स्थापित कर सके।

किशोरावस्था एक ऐसी अवस्था है जहां किशोर अपने आपको व्यस्त मानता है इसलिए विद्यालय में किशोरों के साथ बालको जैसा व्यवहार नहीं करना चाहिए। किशोरों में समाज में अपनी उचित स्थिति प्राप्त करने की प्रबल इच्छा होती है इसलिए पाठ्यक्रम में उनको विभिन्न कार्यों का उत्तरदायित्व प्रदान करने जैसे विषय वस्तु का समायोजन होना चाहिए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सामाजिक क्रियाओं, छात्र स्वशासन और युवक गोष्ठियों का संगठन किया जाना चाहिए।

बालकों के भावी भाग्य और उत्कृष्ट जीवन के निर्माण में इस अवस्था की गरिमा से अपना ध्यान को एक क्षण के लिए भी विचलित ना करके अध्यापकों और अभिभावकों को उनकी शिक्षा का सुनियोजित संचालन करना चाहिए क्योंकि इस अवस्था में बालक का झुकाव जिस ओर हो जाता है वह उसी और जीवन में वह आगे बढ़ता है।

वैलेंटाइन ने अपने इन वाक्यों से किशोर अवस्था में शिक्षा के महत्व को बहुत शक्तिशाली रूप से व्यक्त किया है – " मनोवैज्ञानिकों द्वारा बहुत समय तक उपदेश दिए जाने के बाद अंत में यह बात व्यापक रुप से स्वीकार की जाने लगी है की शैक्षिक दृष्टिकोण से किशोर अवस्था का अधिक महत्व है।"

बोध प्रश्न

नीचे दिए गए रिक्त स्थान पर अपना उत्तर स्पष्ट कीजिए।

1. किशोरावस्था को शारीरिक विकास का सर्वश्रेष्ठ काल माना जाता है। क्यों ?

.....

.....

.....

2. किशोरों की मानसिक शक्तियों का विकास करने के लिए विद्यालय में कौन कौनसी विधियों का प्रयोग किया जा सकता है?

.....

.....

.....

3.6 सारांश

वृद्धि और विकास की प्रक्रिया कुछ निश्चित सिद्धांतो का पालन करती है। इन सिद्धांतो का अध्ययन करने पर हमें ज्ञात होता है कि वह निरंतरता, विकास क्रम में एकरूप्ता, वयक्तिक अंतर, एकीकरण, परस्पर संबंध के सिद्धांतों का पालन करती है। साथ ही हमें यह भी ज्ञात हुआ की वृद्धि और विकास की गति एक नहीं रहती और वह सामान्य से विशेष की ओर चलता है। विद्यार्थियों के अध्ययन से हमें यह भी ज्ञान मिलता है कि वृद्धि और विकास दो दिशाओं में संपन्न होती है, वह अवस्थाओं पर निर्भर रहती है और शुरुआती विकास बाद के विकास का प्रेरक होता है। इन सिद्धांतों का अध्ययनएक अध्यापक के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह ज्ञान उन्हें बालकों के पठन पाठन को उचित दिशा और मात्रा देने के लिए बहुत कुछ आधारभूत भूमि और परामर्श प्रदान करता है

सिद्धांतों का अध्ययन बालकों की वृद्धि और विकास से संबंधित निश्चित दिशा और पहलुओं का ज्ञान देता है और उन्हें यह निर्णय लेने मैं सहायता करता है कि किस आयु विशेष में बालकों से किस प्रकार के विकास की अपेक्षा की जा सकती है।

शैक्षणिक दृष्टि से मानव विकास में मूलतः तीन अवस्थाएं होती हैं। शैशवावस्था, बाल्यावस्था और किशोरावस्था। शैशवावस्था में बालक का शारीरिक और मानसिक विकास बहुत तेजी से होता है लेकिन वह शारीरिक रुप से बड़ों पर निर्भर रहता है। इस अवस्था में बालक स्वाभाविक रुप से जिज्ञासू रहते हैं और कई प्रश्न पूछते हैं। इस अवस्था में शिक्षा अधिकतर खेल द्वारा दी जानी चाहिए जिससे वह आत्मनिर्भर बन सके, उसमें आत्मविश्वास का संचार हो और वह आस–पास के वस्तुओं के विषय में सामान्य ज्ञान प्राप्त कर सकें।

6 से 12 वर्ष की आयु के बालक बाल्यावस्था से गुजर रहे होते हैं। यह अवस्था भविष्य में नीव का काम करती है। इस अवस्था में शारीरिक विकास में थोड़ा ठहराव नजर आता है लेकिन यह उम्र नई आदतें व्यवहार रुचियाँ और मूल्य विकसित करने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस उम्र में शिक्षा प्रदान करने के लिए नवीन विधियों का प्रयोग करना चाहिए एवं अध्यापक को विद्यार्थियों को समूह कार्य करने के अवसर उदाहरण के साथ प्रदान करना चाहिए।

बाल्यावस्था के बाद आती है किशोरावस्था। यह अवस्था मानव के लिए बहुत ही कठिन होती है। इस समय बालक बहुत ही भावुक, संवेदनशील, उत्तेजित, अशांत और चंचल रहता है। इस उम्र में बालकों में आश्चर्यजनक शारीरिक बदलाव होते हैं। वह अपने विपरीत लिंग से आकर्षित भी होता है। इस उम्र में बालकों को अपने शारीरिक शक्ति का उचित इस्तेमाल करने का मौका देना चाहिए साथ ही उन्हें अपनी रुचियों के अनुसार ज्ञान प्राप्त करने का अवसर भी देना चाहिए ताकि वह समाज में एक जिम्मेदार व्यक्ति

की भूमिका निभा सके। अंततः यह कहा जा सकता है की वृद्धि और विकास की विभिन्न अवस्थाओं के ज्ञान होने से उस विशिष्ट अवस्था में बालकों के सर्वांगीण विकास में सहायता मिलती है।

3.7 अभ्यास कार्य

1. मानव वृद्धि और विकास के सिद्धांतों का अध्ययन अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस कथन का विवेचन करें।
2. शैशवावस्था का महत्व प्रदर्शित करते हुए उस की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
3. बाल्यावस्था में शैक्षिक विकास के समय किन–किन बातों का ध्यान रखना चाहिए।
4. किशोरावस्था जीवन का सबसे कठिन काल है। इस कथन की व्याख्या करते हुए इस अवस्था के बालकों के लिए एक संक्षिप्त कार्यक्रम प्रस्तुत करें।

3.8 संदर्भित एवं विशेष अध्ययन ग्रंथ

Bhatia, H. R. (1968), *Elements of Educational Psychology,* Calcutta: Orient Longman.

Boring, E.C., Langfield, H. S. and Weld, H.P. (1961), (Eds), *Foundations of Psychology,* New York: John Wiley and Sons.

Douglas, O.B and Holland, B.F. (1947), *Fundamentsl of Educational Psychology,* New York: The Macmillan Co.

Hurlock, E. B. (1956), *Child Development,* Tokyo, McGraw-Hill

Kuppuswami, B. (1963) (Ed.) *Advanced Educational Psychology,* Jalandhar, University Publication.

Mangal, S. K. (2002), *Advanced Educational Psychology,* New Delhi, Prentice-Hall of India

Mathur S.S.(2007), *Fundamentals of Educational Psychology,* Himalaya Publishing House.

Sorenson, Herbert (1948*) Psychology in Education*, New York, McGraw-Hill